

इकाई-1 : बालक एवं बाल्यावस्था की समझ—विभिन्न परिपेक्ष्य में

संरचना

- 1.1 परिचय
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 संस्कृति के संदर्भ में : बाल्यावस्था की अवधारणा
 - 1.3.1 बाल्यावस्था : आधुनिक संप्रत्यय और निर्माण
 - 1.3.2 बाल्यावस्था की विशेषताएं
 - 1.3.3 संस्कृति का बाल्यावस्था पर प्रभाव
- 1.4 संस्कृति
 - 1.4.1 संस्कृति और व्यक्तित्व
 - 1.4.2 सामाजिक जीवन में संस्कृति की भूमिका
- 1.5 समाज और बाल्यावस्था
 - 1.5.1 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
 - 1.5.2 बालक का समाजीकरण
- 1.6 जाति का प्रभाव
 - 1.6.1 जाति की परिभाषा
 - 1.6.2 व्यावसायिक विभाजन
 - 1.6.3 जाति व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन
- 1.7 वर्ग का प्रभाव
 - 1.7.1 वर्तमान समय में वर्ग का प्रभाव
- 1.8 लिंग
 - 1.8.1 लिंग का प्रभाव
- 1.9 प्रजाति का प्रभाव
- 1.10 धर्म का प्रभाव
- 1.11 बाल्यावस्था में अक्षमता का प्रभाव
 - 1.11.1 बाल्यावस्था में विशेष बच्चों के वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव
 - 1.11.2 अक्षम बालकों का समाजीकरण
- 1.13 संस्कृतिक विविधता

1.14 इकाई सारांश (याद रखने योग्य बातें)

1.15 अपनी प्रगति की जांच करें

1.16 नियम कार्य/गतिविधियाँ

1.17 चर्चा /स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.17.1 चर्चा के बिन्दु

1.17.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.18 अपनी प्रगति की जाँच के उत्तर

1.19 संदर्भ ग्रंथ

1.1 परिचय

एक बच्चा अपने आरम्भिक जीवन में केवल एक जैवकीय प्राणी होता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसे व्यवहार के उन तरीकों को सिखाया जाता है जो उसके समाज और संस्कृति द्वारा मान्य होते हैं। एक विशेष समाज की संस्कृति का विकास बहुत धीरे-धीरे एक लम्बी अवधि में होता है। जब बहुत से व्यक्ति एक-दूसरे से अन्तर्क्रिया करते हैं तथा आपसी सम्बन्धों की स्थापना करते हैं तो व्यवहार के अनेक तरीके विकसित हो जाते हैं। परिवार, पास पड़ोस और विद्यालय में सांस्कृतिक वातावरण का बालक पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक वातावरण विचारों, आदर्शों, लक्ष्यों और शब्दों से बनता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई से गुजरने के बाद हम योग्य हैं—

- बाल्यावस्था का अर्थ समझने में
- संस्कृति का प्रभाव बाल्यावस्था पर जानने में
- समाज और बाल्यावस्था की व्याख्या करने में
- जाति के प्रभाव को समझने में
- बाल्यावस्था पर धर्म का प्रभाव समझने में

- बाल्यावस्था में अक्षमता के प्रभाव को समझने में
- बाल पालन विधियाँ जानने में
- सांस्कृतिक विविधता को जानने में

1.3 संस्कृति के संदर्भ में : बाल्यावस्था की अवधारणा

1.3.1 बाल्यावस्था: आधुनिक संप्रत्यय और निर्माण

पूरे विश्व में बाल्यावस्था को मानव विकास की एक प्राकृतिक अवस्था माना जाता है। वास्तव में हम बाल्यावस्था को जैविक विशेषताओं के आधार पर समझते हैं। छोटे बच्चे अपने जीवन के लिए पूरी तरह बड़ों पर निर्भर रहते हैं। शिशु न तो अपने आप आहार ले सकता है और न ही अपनी देखभाल कर सकता है। यदि नन्हें शिशु को बड़ों की देखभाल के बिना छोड़ दिया जाए तो उसकी मृत्यु स्वाभाविक है। जबकि पशुओं के बच्चे अधिक स्वयं समर्थ होते हैं।

शैशवावस्था के तुरंत बाद बाल्यावस्था आरम्भ हो जाती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बाल्यावस्था बालक का निर्माणकारी काल है। इस अवस्था में बालक व्यक्तिगत सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी आदतों, व्यवहारों, रुचियों तथा इच्छाओं के प्रतिरूप का निर्माण कर लेता है। इस काल में बालकों में आदतों, इच्छाओं, रुचियों के जो भी प्रतिरूप बनते हैं वे लगभग स्थायी रूप धारण कर लेते हैं और उन्हें सरलतापूर्वक रूपान्तरित नहीं किया जा सकता। सामान्यतः बाल्यावस्था मानव जीवन के लगभग 6 से 12 वर्ष की आयु का वह काल है जिसमें बालक के जीवन में स्थायित्व आने लगता है और वह आगे आने वाले जीवन की तैयारी करता है। बाल्यावस्था की यह आयु शिक्षा आरम्भ करने के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

बाल्यावस्था में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। वह अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए माता-पिता व घर के अन्य सदस्यों से प्रश्न पूछता है। यही से बालक जिन विभिन्न विश्वार्थों, विचारों, नियमों, प्रथाओं, परम्पराओं और शिष्टाचार के तरीकों में जीवन व्यतीत करता है, इन सभी से संस्कृति का निर्माण होता है।

संस्कृति— साधारण भाषा में संस्कृति का अर्थ सुंदर परिष्कृत रुचिकर कल्याणकारी गुणों से है। इसमें मनुष्य द्वारा सामाजिक सदस्य हाकर उसकी योग्यताएँ व आदतें भी शामिल होती हैं।

बीरस्टीड (Bierstedt) ने कहा है कि आज संस्कृति का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें विभिन्न प्रकार के विश्वासों, जनरीतियों, लोकाचारों, पौराणिक गाथाओं, साहित्य, वैज्ञानिक ज्ञान, कानूनों, प्रथाओं संस्कारों, कर्मकाण्डों, शिष्टाचार के तरीकों और सदाचार के नियमों का सम्मिलित रूप दिखाई देता है। स्पष्ट है कि संस्कृति की यह विशेषताएँ व्यक्ति के निर्माण में योगदान करती है।

1.3.2 बाल्यावस्था की विशेषताएँ (Chief Characteristic of childhood)

बालक विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :-

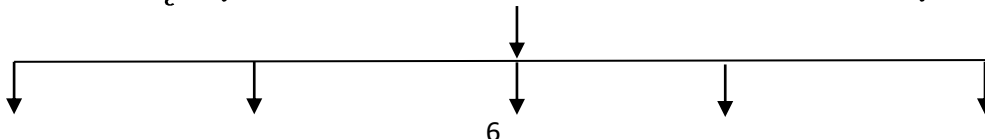
1. शारीरिक एवं मानसिक विकास में स्थिरता (Stability In Physical And Mental Growth) शैशवावस्था और पूर्व बाल्यकाल (6 से 9 वर्ष) में विकास हो जाता है वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार उत्तर बाल्यकाल (10 से 12 वर्ष) में दृढ़ होने लगता है उनकी चंचलता शैशवावस्था की अपेक्षा कम हो जाती है और वयस्कों के समान व्यवहार करता दिखाई पड़ता है।
2. मानसिक योग्यताओं का विकास (Development in Mental Abilities) इस अवस्था में बालकों में सभी आवश्यक मानसिक योग्यताएँ विकसित होने लगती हैं। वह मूर्त तथा प्रत्यक्ष वस्तुओं के लिए सरलता से से चिंतन कर लेता है। समझने, स्मरण करने, तर्क करने आदि की योग्यताएँ विकसित हो जाती हैं।

3. प्रबल जिज्ञासा प्रवृत्ति (Interne in curisity) बाल्यावस्था में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। वह अपनी जिज्ञासा को शान्त करने माता पिता व घर के अन्य सदस्यों से प्रश्न पूछता है। शैशवावस्था में उनके प्रश्नों की प्रकृति क्या तक सीमित रहती है, परन्तु बाल्यावस्था में वह 'क्यों' और 'कैसे' भी जानना चाहता है।
4. वास्तविक जगत से संबंध (Relationship Real World) बालक काल्पनिक जगत से निकल कर वास्तविकता जगत में विचरण करने लगता है। वह वास्तविक जगत की प्रत्येक वस्तु से आकर्षित होता है तथा इसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।
5. आत्मनिर्भरता की भावना (Feeling of Self-Dependence) इस समय शैशवावस्था की भांति बालक शारीरिक एवं दैनिक कार्यों के लिए पराश्रित नहीं रहता। वह अपने दैनिक कार्य (नहाना— धोना, कपड़े, पहनना, स्कूल जाने की तैयारी आदि) स्वयं कर लेता है।
6. रचनात्मक कार्यों में रुचि (Interest in Constructive work) बाल्यावस्था में रचनात्मक कार्यों में रुचि की बहुलता होती है बालक—बालिकाएँ निर्माण कार्य करने में आनन्द और संतोष अनुभव करते हैं। लड़के— लड़कियाँ अपनी रुचि के अनुसार विविध कार्यों को करने में रुचि दिखाते हैं। जैसे दप्ती से गुलदस्ता या मकान बनाना मिट्टी से खिलौने बनाना, रंगीन कागज तथा कपड़े से फूल आदि बनाना, लड़की की कोई वस्तु बनाना, गुड़िया बनाना आदि।
7. संवेगों पर नियंत्रण (Control On Emotions) बाल्यावस्था में संवेगों में स्थिरता आ जाती है। बालक भय और क्रोध को नियंत्रित करना सीख लेता है। वह अपने माता—पिता व अध्यापकों के सामने भी अपनी भावनाएँ प्रकट करने में संकोच करते हैं। साथ ही वे यह भी सीख लेते हैं कि किसके सामने कौन सी भावना को व्यक्त करना लाभकारी हो सकता है।

8. सामाजिक गुणों का विकास (Development of social Qualities) बालक विद्यालय के विद्यार्थियों और अपने समूह के सदस्यों के साथ पर्याप्त समय व्यतीत करता है। अतः उसमें अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। जैसे – सहयोग, सद्भावना, सहनशीलता और आज्ञाकारिता आदि।
9. सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता (Intensity in Group Feeling) बालक अधिक से अधिक समय दूसरे बालकों के साथ व्यतीत करना चाहता है। वह किसी न किसी समूह का सदस्य बन जाता है। अतः बालक में प्रबल सामूहिक प्रवृत्ति होती है।
10. बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास (Development of Extrovert Personality) इस अवस्था में बालकों में बहिर्मुखी प्रवृत्ति विकसित होने लगती है। वे बाहर घूमने, बाहर की वस्तुओं को देखने, दूसरों के प्रति जानने आदि में रुचि प्रदर्शित करने लगते हैं।
11. संग्रह प्रवृत्ति का विकास (Development of Acquisition Instinct) संग्रह की प्रवृत्ति बाल्यावस्था में तीव्र होती है बालक विशेष रूप से पुराने स्टाम्प, गोलिया, खिलौने, मशीनों के कल-पुर्जे और पत्थर के टुकड़े और बालिकाएँ विशेष रूप से खिलौने, गुड़िया, कपड़े के टुकड़े आदि संग्रह करती देखी जाती है।
12. काम प्रवृत्ति में परिवर्तन (Change in sence of sex) शैशवावस्था समाप्त होते-होते बालक वातावरण से समायोजन स्थापित करने लगता हैं। माँ से अत्यधिक लगाव तथा पिता से विरोध की भावना न्यूनतम हो जाती है बच्चों में समलिंगी प्रेम पनपने लगता है। लड़के-लड़कों को अपना दोस्त बनाने है और लड़कियाँ लड़कियों को अपनी सहेली बनाती है।

1.3.3 संस्कृति का बाल्यावस्था पर प्रभाव

बाल्यावस्था में संस्कृति एवं सामाजिक परिपेक्ष्य में विभिन्न प्रकार की विकासात्मक क्रियाएं होती है।



संस्कृति के परिपेक्ष्य में बाल्यावस्था में ज्ञानात्मक एवं व्यक्तित्व का विकास बहुत अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। उससे व्यक्ति और समुदाय तथा व्यक्ति और सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। संस्कृति व्यक्ति के विचारों, विश्वासों और गुणों को सामुदायिक जीवन के अनुरूप बनाती है। वह व्यक्तित्व के विकास की दिशा निर्धारित करती है। व्यक्ति जहाँ समाज के द्वारा परिवर्तित होता है वहाँ वह समाज को परिवर्तित भी करता है। लम्बे काल में अनुभव से विभिन्न समुदायों में आदर्श व्यक्तित्व के प्रतिमान निश्चित हुए हैं। ये सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने से ही ग्रहण किए जा सकते हैं। अस्तु, व्यक्ति विभिन्न सामाजिक संस्थाओं में भाग लेकर ही सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करता है। इसलिए व्यक्तित्व के विकास में समूह के प्रति अनुमोदन का विकास होता है। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि पारिवारिक परम्पराएँ और सामाजिक नियम ही व्यवहार के प्रतिमान निश्चित करते हैं। विभिन्न समाजों में सामाजिक संस्थाओं के अतिरिक्त आर्थिक, नैतिक, धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं का भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। इन्हीं से विभिन्न क्षेत्रों में उसके आदर्श, लक्ष्य और मूल्य निश्चित होते हैं। इस प्रकार परिवार, धर्म, राज्य अथवा राष्ट्र विचार का मूर्त रूप हैं। संस्थाओं के विकास के साथ-साथ इन विचारों का भी विकास होता है। संस्थाओं के विकास के साथ-साथ उनमें भाग लेने वाले सदस्यों पर उनके प्रभाव में भी परिवर्तन होता है।

संस्कृति विभिन्न साधनों से समाज के सदस्यों में संचारित होती है। इन साधनों के परिवर्तन से भी व्यक्तियों में परिवर्तन देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए रेडियो और टेलीविजन के आविष्कार से सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसार अधिक आसान हो गया है। इससे स्त्री-पुरुष के व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मनोरंजन के साधन सांस्कृतिक प्रसार के महत्वपूर्ण साधन हैं। लगभग सभी देशों में सिनेमा का लोगों के व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है।

विभिन्न संस्कृतियों में स्त्री-पुरुष को भिन्न-भिन्न स्थितियाँ और उनके अनुरूप भिन्न-भिन्न कार्य प्रदान किए जाते हैं। इनसे भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न संस्कृतियों में परिवार में माता-पिता और सन्तान के अधिकारों और कर्तव्यों में अन्तर होता है। इनसे भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ते हैं। विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तरीकरण देखा जा सकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसके सामाजिक वर्ग का प्रभाव अनेक अनुसन्धानों से स्पष्ट हुआ है।

1.4 संस्कृति

संस्कृति का अर्थ

लिन्टन के अनुसार, संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार, अभिवृत्ति और मूल्यों का वह समुच्चय है जिसे समाज के सदस्य ग्रहण करते हैं तथा हस्तान्तरित करते हैं।

बालक को सामाजिक प्राणी बनाने के लिए जितनी भी परम्पराओं, नियमों और वस्तुओं का विकास हुआ है, वे सभी संस्कृति का अंग हैं। संस्कृति की उत्पत्ति 'संस्कार' शब्द से मानते हैं। संस्कार का आशय एक ऐसी क्रिया से है जो व्यक्ति को अपने कर्तव्यों को बोध कराकर उसका समाज में अनुकूलन करती है। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने और उसके व्यक्तित्व को विकसित करने में जितने भी भौतिक और अभौतिक तत्वों का योगदान होता है, उन सभी की व्यवस्था को हम संस्कृति कहते हैं।

1.4.1 संस्कृति और व्यक्तित्व

बालक बाल्यावस्था से ही किसी न किसी संस्कृति में रहता है। यह ओर बात है कि यह ज्ञात ही नहीं होता है कि बालक जिस संस्कृति में रहता है। वह संस्कृति बालक के सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। बालक का व्यक्तित्व और व्यवहार यद्यपि अनेक कारकों की पारस्परिक अन्य क्रियाओं के फलस्वरूप विकसित होता है फिर भी इन अनेक कारकों में संस्कृति एक महत्वपूर्ण कारक है। संस्कृति का बाल्यावस्था पर प्रभाव स्पष्ट प्रभाव दिखता है क्योंकि शैशवावस्था में परिवार में माँ से सर्वाधिक संबंध होता है, धीरे-धीरे

बाल्यावस्था आने तक संबंध परिवार के अन्य सदस्यों, खेल के साथियों से होने लगता है। परिवार के सदस्यों द्वारा सीखे गये सभी तरह के व्यवहारों का अनुकरण बाल्यावस्था में बालक करने लगता है। उदाहरण के लिए अभिवादन करना, स्वच्छता रखना, आज्ञा मानना और शिष्टता प्रदर्शित करना आदि सीखे हुए व्यवहार हैं। इसी कारण ये संस्कृति के अंग हैं इन व्यवहारों को बालक अपने परिवार पड़ोस तथा विभिन्न संगठनों के बीच सीखता है। इस अवस्था में वह सीखे हुये व्यवहारों का उपयोग करता है वस्तुओं को पहचानने, उनका विभेदीकरण करने, वर्गीकरण करने तथा उपयुक्त नाम या वर्गीकरण द्वारा समझने और युक्त करने की क्षमता विकसित हो जाती है। उनमें विभिन्न प्रकार के संप्रत्यायों का निर्माण हो जाता है।

1. भारतीय संस्कृति का प्रभाव:—

बालक जिस संस्कृति में रहता है उनका अनुकरण करने लगता है जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर स्पष्ट दिखने लगता है। भारतीय संस्कृति में अधिकारों की तुलना में कर्तव्यों की पूर्ति पर अधिक बल दिया जाता है। उनमें मानवीय मूल्यों, सामाजिक अवस्था, पवित्रता संबंधी व्यवहारों, पारस्परिक कर्तव्यों का प्रभाव पड़ता है।

2. भौतिक संस्कृति का प्रभाव :—

भौतिक संस्कृति में हम सभी तरह के औजारों, मशीनों, इमारतों वस्त्रों, बर्तनों और उन सभी वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं। जिनके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इन सभी वस्तुओं को देखा जा सकता है। इन कारण भौतिक संस्कृति मूर्त होती है। बाल्यावस्था में बालक मूर्त तथा बाल्यावस्था में बालक में मूर्त तथा अमूर्त का अन्तर विकसित हो जाता है। वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। वर्तमान समय में टेलीविजन के कार्यक्रम सभी संस्कृतियों वाले समूहों के द्वारा समान रुचि के साथ देखे जाते हैं। इससे बालकों के परम्परागत व्यवहारों में एक बड़ा परिवर्तन सामने आने लगा है। इसका प्रभाव बाल्यावस्था में दिखायी पड़ने लगा।

प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है – रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, धर्म, कल्प, दर्शन, आचार-विचार, रीति रिवाज, मूल्य मानक, भाषा, उपकरण राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था के अनुसार ही उनके बालकों का समाजीकरण होता है बालक अपनी संस्कृति विशिष्टताओं को अपने चिन्तन में ग्रहण करता है।

1.4.2 सामाजिक जीवन में संस्कृति की भूमिका

1. **कष्ट की सहनशीलता** – बुडवर्थ द्वारा विभिन्न प्रजातियों का अध्ययन कर देखा गया कि भिन्न-भिन्न प्रजातियों में कष्ट सहने की सहनशीलता भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका की संस्कृति में बच्चों को बाल्यावस्था से ही कष्टदायक परिस्थितियों से दूर रखा जाता है। कष्ट सहन करने सम्बन्धी उन्हें कोई अभ्यास नहीं कराया जाता है थोड़ी-सा कष्ट होने पर उन्हें विभिन्न प्रकार की औषधियाँ दी जाती है। अतः इस संस्कृति के लोगों में कष्ट सहने की क्षमता कम से कम होती है।
2. **उत्तरदायित्व की भावना** – भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोगों में उत्तरदायित्व की भावना भी भिन्न-भिन्न मात्रा में पायी जाती है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि बड़े परिवार और संयुक्त परिवार के बच्चों में उत्तरदायित्व की भावना अधिक मात्रा में पायी जाती है तथा छोटे आकार वाले परिवार के बच्चों में उत्तरदायित्व की भावना कम मात्रा में पायी जाती है मैडगास्कर के टनाला लोगों में यह देखा गया है कि जन्म के बाद से ही बड़े लड़के का पालन-पोषण इस प्रकार किया जाता है तथा उसे इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि बड़े होने पर उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सके।

अपनी प्रगति की जाँच करें—

नोट – अ. नीचे दिये गये स्थान पर उत्तर लिखे।

ब. अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये उत्तर से करें।

प्र.1 बाल्यावस्था किस आयु से आरम्भ होती है।

प्र.2 संस्कृति का शाब्दिक अर्थ क्या है?

1.5 समाज और बाल्यावस्था

1.5.1 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

नवजात शिशुओं का प्रारम्भ में सम्बन्ध माँ से सर्वाधिक होता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि उसकी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति माँ से होती है। माँ बच्चों को भोजन ही नहीं देती हैं बल्कि उसका पूरा-पूरा ध्यान रखती है और उसके खेलने और खुशियों के लिए हर प्रकार के प्रयास करती है। 2 साल की अवस्था तक बालक के सामाजिक संबंध अधिकांशतः उसके परिवार तक सीमित होते हैं। माँ के साथ स्थापित सामाजिक सम्बन्ध बालक में उसके अन्य सामाजिक सम्बन्धों के लिए मॉडल का कार्य करते हैं। माँ बच्चे को स्तनपान कराकर, गोद में खिलाकर, थपथपाकर, चुम्बन आदि से अपने स्नेह को प्रदर्शित करती है। इन सबका प्रभाव बालक के सामाजिक विकास और व्यक्तित्व पर पड़ता है।

बाल्यावस्था में समाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। बालक प्राथमिक विद्यालय में जाना आरम्भ कर देता है, नए वातावरण तथा नए साथियों के सम्पर्क अनुकूलन, समायोजन तथा सामाजिक भावना का विकास होता है तथा यह विकास तेजी से होता है। कोई बालक यदि समाज विरोधी या व्यक्तिगत व्यवहार करता है तो समूह के सभी सदस्य उसे ऐसा करने से रोकते हैं, क्योंकि बालक प्रायः किसी-किसी न किसी समूह का सदस्य होकर भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाता है खेल-खेलता है, आपस में वस्तुओं का आदान प्रदान करता है। बाल्यावस्था में सामाजिक विकास निम्नवत् होता है –

1. जब बालक विद्यालय जाने लगता है। तब विद्यालयी वातावरण उसके सामाजिक विकास में सहायक होता है। यहाँ पर वह नए वातावरण से अनुकूलन करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना तथा नए मित्र बनाना सीखता है।
2. अपने माता-पिता तथा अन्य बड़ों की छत्रछाया से अपने को मुक्त करता है और उनके साथ कम से-कम समय बिताना चाहता है। अब उनके साथ खेलने कूदने में आनन्द नहीं आता। उसे अपनी आयु के बालकों के साथ खेलना अच्छा लगता है।
3. अपने समूह विशेष के प्रति बालकों की गहरी आस्था या भक्ति-भाव पाया जाता है। दूसरी पीढ़ियों के दृष्टिकोण और विचारों में अन्तर के कारण माता-पिता तथा अध्यापकों की मान्यताओं का बालक की टोली की मान्यताओं और आदर्शों से प्रायः टकराव होता रहता है। अतः बालकों के सामने समायोजन से सम्बन्धी नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।
4. समूह के सदस्य के रूप में बालक – बालिकाओं के अंदर अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। उत्तरदायित्व, सहयोग, साहस, सहनशीलता, आत्मनियंत्रण, न्यायप्रियता आदि गुण बालक में धीरे-धीरे उदय होने लगते हैं।
5. बालक – बालिकाओं की रुचियों में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। लड़कों की दौड़ने-भागने वाले खेलकूदों, घर के बाहर घूमने, मारधाड़ करने जैसे कार्यों में अधिक रुचि पाई जाती है।
6. स्वत्वाधिकार का भाव बालकों में कम पाया जाता है। सार्वजनिक सम्मान की भावना अधिक पाई जाती है। यह सामाजिक विकास की प्रगति बताता है। बाल्यावस्था में ही नेतृत्व के गुणों का विकास आरम्भ हो जाता है।
7. क्रो एवं क्रो के अनुसार – छः से दस वर्ष तक के बालक अपने वांछनीय तथा अवांछनीय व्यवहार में निरन्तर प्रगति करता रहता है। बहुधा उन्हीं

कार्यों को करता है, जिनके किए जाने का कोई उचित कारण जान पड़ता है। वह अपनी बुद्धि के बल पर समाज के अनुकूल काम करता है।

8. प्रायः ऐसे बालक जिन्हें परिवार तथा साथियों में प्रशंसा, सम्मान और मान्यता नहीं मिलती, वे उद्दण्ड बन जाते हैं। इस प्रकार के बालकों का व्यवहार सबके लिए चिन्ताजनक होता है। ये बालक समस्या बालक (Problem Child) बन जाता है।
9. इस अवस्था में वे कई प्रकार के खेल खेलते हैं। इन खेलों के द्वारा वह सामाजिक सम्पर्क स्थापित करता है और उसमें सामाजिकता का विकास होता है। इस समय उसमें संगठित रूप से खेल खेलने की प्रवृत्ति अधिक होती है। बालक सहयोग से खेलना तथा सामाजिक नियमों का पालन करना सीख जाता है। खेल उसके सामाजिक जीवन का एक अंग बन जाता है।

1.5.2 बालक का समाजीकरण

बालक के समाजीकरण पर सबसे अधिक प्रभाव परिवार के प्रौढ़ सदस्यों और माता-पिता के द्वारा देखभाल और पालन-पोषण के तरीके का पड़ता है। बालक के समाजीकरण की प्रथम पाठशाला परिवार ही होता है। बालक अपने परिवार के सदस्यों, माता-पिता, सम्बन्धियों से बहुत कुछ सीखता है, उनके व्यवहार, तौर-तरीके, रहन-सहन का अनुकरण करता है।

बालक के समाजीकरण में सम्बन्ध का विश्लेषण :—

1. बालक के समाजीकरण हेतु परिवार के प्रौढ़ सदस्यों के साथ उसका सुसम्बन्ध होना आवश्यक है, तभी बच्चे उनका अनुसरण करेंगे। बालकों की कुछ मूल आवश्यकताएँ होती हैं, माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यों को चाहिए कि वे बच्चों को एहसास कराएँ कि वे उन्हें प्यार करते हैं तथा उनके साथ रहकर खुश हैं। बच्चे संवेदनशील होते हैं, प्रौढ़ों की प्रशंसा भरी बातें बच्चों को अनुभूति कराती हैं कि ये सभी लोग उसको चाहते हैं। उसको घर में छोटी-छोटी जिम्मेदारी दी जाए तथा उनकी पहल और निर्णय शक्ति का सम्मान व सराहना की जाए।

1. बच्चे को जब यह एहसास होता है कि आवश्यकता के समय परिवार के प्रौढ़ सदस्य उसको संरक्षण देते हैं, चिन्ता के विषयों पर माता पिता की राय ले सकता है, तो उसका समाजीकरण उचित ढंग से होता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रवेश करने में बालक को हिचक नहीं होती, उसको समाज के मूल्यों और मानकों को स्वीकार करने में सरलता होती है।
2. बच्चा अपने माता पिता के अधिक नजदीक होता है, माता-पिता को देखकर ही सीखने का तरीका अपनाता है। बच्चा अपने माता पिता के साथ रहना पसन्द करता है। वह चाहता है कि माता-पिता उसे घुमाने-फिराने ले जाएँ, जहाँवह अपने माता-पिता के साथ घुल मिल कर बात कर सकता है। बच्चा अपने माता -पिता के साथ घूमने-फिरने का अवसर पाता है तो महसूस करता है कि वे उसके सच्चे मित्र हैं, उसके अद्भुत विचार पर गुस्सा नहीं करेंगे, डाटेंगे नहीं। इससे उसका अत्म विश्वास मजबूत होता है समाजीकरण के दौरान आत्मविश्वास के सहारे वह अपने नैराश्य और आक्रमण मनोवेग को नियन्त्रित करने में सक्षम बनता है।
3. बालक के समाजीकरण में बालक एवं माता पिता के बीच अनुक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है। बहुत से परिवार ऐसे होते हैं जहाँ माता पिता दोनों अपने कार्य/व्यवसाय में व्यस्त रहते हैं, बच्चों को समय नहीं दे पाते। अगर घर में रहते भी हैं तो अपने कमरे में माता टेलीविजन देखने में व्यस्त रहती हैं, पिता दफतर की फाइलों में उलझे रहते हैं, बच्चे अगर कमरे में क्या कर रहे हैं, उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। ऐसे में बच्चों, बालक और माता-पिता के मध्य शून्य अनुक्रिया रहती है। शून्य अनुक्रिया बालक के समाजीकरण के लिए घातक होती है।
4. जो माता-पिता बालकों को कठोर नियन्त्रण में रखते हैं, उनके व्यक्तित्व को आदर नहीं देते, सभी बालकों के साथ समान व्यवहार नहीं करते, तो ऐसे बालक तिरस्कार और नियन्त्रण से सदैव भयभीत रहते हैं, ऐसे बालक या तो अन्तर्मुखी हो जाते हैं या फिर क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के हो जाते हैं तथा समाज

विरोधी आचरण करने लगते हैं। बच्चों की गतिविधियों से अपरिचित रहना बहुत बड़ा खतरा होता है, बच्चे इन्टरनेट का दुरुपयोग करने लगते हैं, संचार के अन्य माध्यमों से कुसंगति में पड़कर अपराध की राह पर चल पड़ते हैं।

5. जो माता-पिता अपने बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन के साधन नहीं उपलब्ध करा पाते, उनके बच्चे छुप-छुप कर अश्लील मनोरंजन का आनन्द लेने लगते हैं, जो बच्चों को समाज के प्रतिकूल व्यवहार के लिए प्रेरित करता है।
6. अति व्यस्तता या अन्य कारणों से जब कुछ माता-पिता/अभिभावक अपने बच्चों की संगति पर ध्यान नहीं देते। बालक के व्यवहारों के निर्धारण में संगति की अहम् भूमिका होती है। दुष्चरित्र बालकों के संगत में पड़कर अच्छे बालक भी असामाजिक बन जाते हैं। साथियों की अभिवृत्तियों, आस्थाओं, रुचियों, मनोभव तथा चरित्र का प्रबल प्रभाव बालक के समाजीकरण पर पड़ता है।
- 9 . उच्च सामाजिक स्थिति वाले परिवार के बालक लिखित व बौद्धिक परीक्षाओं में स्पष्ट रूप श्रेष्ठ होते हैं एवं उनमें सामाजिक गुणों का विकास करती है आत्मनियंत्रण, साहस, न्याय, सहनशीलता, सद्भावना आदि गुणों का विकास करती है तथा संवेगात्मक और सामाजिक विकास साथ-साथ चलते हैं।

1.6 जाति का प्रभाव

जाति एक सामाजिक संस्था है जिसका निर्धारण बालक के जन्म से होता है। बालक आजीवन अपनी जाति की सदस्यता को नहीं बदल सकता। बालक के व्यवसाय, गुण और स्वभाव में परिवर्तन होने से वर्ग की सदस्यता भी बदल जाती है

हम सभी लोग किसी न किसी संस्कृति में रहते हैं। यह और बात है कि हम लोगों में से अधिकांश की यह सामाजिक विभेदीकरण वह दशा है जिसमें कोई समाज जाति, वर्ग, लिंग धर्म तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर अनेक भागों में

विभाजित हो पाता है। दुनिया के समाजों में जहाँ आर्थिक स्थिति और शिक्षा का स्तर समाज को विभिन्न भागों में विभाजित करता है, वही भारतीय समाज में जाति, वर्ग, लिंग, आर्थिक प्रस्थिति तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ वे आधार हैं। जिन्होंने बहुत प्राचीन काल से यहाँ के समाज को विभिन्न स्तरों में विभाजित कर रखा है। व्यापक अर्थों में इन आधारों पर बनने वाले समूहों को हम जाति वर्ग कहते हैं।

1.6.1 जाति की परिभाषा

मजूमदार तथा मदन ने लिखा है— “जाति एक बन्द वर्ग है।” इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक जाति को एक-एक ऐसे वर्ग के रूप में समझा जा सकता है जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती है तथा व्यक्ति को अपनी जाति को बदलने की किसी भी दशा में अनुमति नहीं दी जाती।

जाति उस वर्ग अथवा झुंड को कहते हैं जिसमें सदस्यों की सदस्यता तथा उनके कर्तव्य एवं अधिकार जन्म से ही निश्चित हो जाते हैं। ध्यान देने की बात है कि जाति एक बन्द वर्ग है इसका कारण यह है कि किसी जाति का कोई सदस्य अपनी जाति के अतिरिक्त दूसरी जाति में स्थान प्राप्त नहीं कर सकता प्रत्येक जाति के लोगों का एक विशेष खान-पान होता है। इस प्रकार प्रत्येक जाति के लोगों का भोजन, विवाह, आजीविका, परम्पराओं की एकरूपता तथा आचार विचार इसके सदस्यों की एकता का आधार होता है।

यद्यपि जातियों के उदाहरण बहुत से देशों में मिलते हैं, परन्तु हमारा देश इसका पूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है प्राचीन भारत में हिन्दू समाज के अन्तर्गत गुण तथा कर्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों अथवा जातियों का निर्माण हुआ था ब्राह्मण, प्रार्थना, कर्मकाण्ड, मन्त्रों का जाप तथा विद्या का पठन पाठन करते थे, क्षत्रिय आने प्राणों की बाजी लगा कर देश की सुरक्षा करते थे वैश्य वाणिज्य एवं व्यापार का संचालन करते थे तथा शूद्र उक्त तीनों वर्णों की सेवा करते थे। इस प्रकार की जाति अथवा वर्ण व्यवस्था ने प्राचीन हिन्दू समाज प्रत्येक जाति अपनी संस्कृति को स्थिर रखती है, सामुदायिक एकता स्थापित करती है तथा अपने

सदस्यों को सामाजिक, मानसिक एवं आवश्यक सुरक्षा प्रदान करके अपने प्रतिबन्धों द्वारा सामाजिक नियन्त्रण के कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करती है।

1.6.2 व्यावसायिक विभाजन

जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति के द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय का रूप पूर्व-निर्धारित होता है। सभी जातियों को यह विश्वास दिलाया गया कि अपनी जाति के लिए निर्धारित व्यवसाय करना ही उनका नैतिक और धार्मिक कर्तव्य है। इस कारण बालक जाति व्यवसाय में अनुभवी व्यक्तित्व को विकसित कर लेता है। जाति व्यवस्था में लोग व्यवसाय के द्वारा आजीविका उपार्जित करने की कोशिश करते थे।

1.6.3 जाति व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन

भारतीय समाज में अनेक नयी दशाओं के प्रभाव से जाति व्यवस्था की संरचना और नियमों में तेजी से परिवर्तन होने लगा। लोग अब यह महसूस करने लगे हैं कि धर्मशास्त्र भी मानवीय मूल्यों को नहीं बदल सकते। भारत में जाति व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों में सामाजिक व्यवस्था में एक अकुलशल ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय की तुलना में निम्न जाति के कुशल और योग्य व्यक्ति को अधिक ऊँचा स्थान मिलने लगा है।

प्रशासन और शिक्षा के सर्वोच्च पदों पर भी निम्न जातियों के लोग अपनी योग्यता को प्रमाणित कर चुके हैं। विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक सम्पर्क भी तेजी से बढ़ रहा है। अब कोई भी विवेकशील व्यक्ति जातियों की उत्पत्ति को ईश्वर द्वारा रचित नहीं मानता। इसके फलस्वरूप जन्म के आधार पर किसी भी जाति को दूसरी से ऊँचा या नीचा नहीं माना जाता। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, उसकी योग्यता और कुशलता से निर्धारित होने लगी है।

वर्तमान भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की संरचना और नियमों में जितनी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, उसका वास्तविक आधार हमारी लोकतांत्रिक और

समताकारी व्यवस्था है। अतः बालक का व्यक्तित्व उक्त संरचना से ही प्रभावित होने लगा है ।

जाति प्रथा के जहाँ उपर्युक्त गुण है, वहाँ कुछ दोष भी है, उदाहरण के लिए जाति की निर्णय कर्म से न होकर जन्म के आधार पर होता है परिणामस्वरूप जो व्यक्ति जिस जाति में जन्म ले लेता है, वह उसी जाति का सदस्य कहलाता है इससे सम्पूर्ण समाज स्थिर हो गया है। यही नहीं, जातीयता की भावना से दिन-प्रतिदिन छुआछूत तथा ऊँच-नीच के भेदभाव भी बढ गये है जो असमानता और शोषण को प्रोत्साहन देता है, एवं जनतन्त्रीय भावना के विपरीत है। इसके अतिरिक्त जातीयता अथवा पैतृकता के अनुसार व्यवसायों को निश्चित कर देने से सामाजिक गतिशीलता भी सीमित हो गई है यही कारण है कि अब केवल सामाजिक रूप से पिछड़े व्यक्तियों को छोड़कर पढ़े लिखे व्यक्ति जातीयता के बन्धनों से मुक्त हो रहे है तथा प्रत्येक व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को अपना सकता है फलस्वरूप बालक का व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पडता है ।

अपनी प्रगति की जाँच करें—

नोट — अ. नीचे दिये गये स्थान पर उत्तर लिखे।

ब. अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये उत्तर से करें।

प्र.3 बाल्यावस्था में समाजीकरण की गति कैसी होती है?

प्र.4 जाति किसे कहते हैं?

1.7 वर्ग का बाल्यावस्था पर प्रभाव

बालकों के सामाजीकरण एवं सांस्कृति विकास पर वर्ग या क्लास का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हमारे वातावरण में विभिन्न वर्ग के लोग हैं जिनका विभेदीकरण आय के अनुसार, देश के अनुसार किया गया है। बालक जिस स्तर पर आधारित होता है। उसके अनुसार उसका मानसिक विकास एवं मूल्य निर्धारित होता है अर्थात् उच्च आय वर्ग का बालक बड़ी-बड़ी सुविधाओं का भोगविलास एवं उच्च महत्वकाक्षाओं के साथ अपनी पंरपरा का निर्वाह करता है तो उसके विपरीत निम्न आय वर्ग के अभिभावकों का बालक महत्वकाक्षाओं के अभाव में या सीमित स्त्रातों के माध्यमों से अपनी अपेक्षाओं और महत्वकाक्षाओं को पूर्ण करता है।

बालक के जीवन में मूल्यों के निर्माण में, सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में, एवं अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ग का तात्पर्य लोगों के ऐसे समूह से होता है जिन्हें सम्पत्ति, आय, व्यवसाय, शिक्षा और प्रभाव के आधार पर दूसरे समूहों से पृथक् किया जा सकता है। बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के सदस्यों द्वारा की जाती है। वह सदस्य उसका पिता होता है, पिता की स्थिति का निर्धारण उसकी आर्थिक सफलता पर निर्भर करता है।

1.7.1 वर्तमान समय में वर्ग का प्रभाव:— व्यवस्था में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण उनकी अपनी योग्यता, कुशलता आर्थिक सफलता धन के आधार पर ऊँचे या नीचे वर्ग की सदस्यता प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ग का रहन-सहन का अपना विशिष्ट स्तर होता है। बालक समाज में अपने आदर एवं सम्मान को बनाये रखने के लिए उन व्यवहार के तरीको एवं रहन सहन को अपने वर्ग के अनुरूप ही रखता है।

निर्धन परिवारों के बच्चें स्वास्थ्य सेवाओं शिक्षा, पौष्टिक आधार) उचित मनोरंजन के साधनों से वंचित रहते हैं, उनकी मनोवृत्ति दूसरे के प्रति अक्सर कुत्सित हो जाती है। अपराध की ओर निर्धन परिवारों के शीघ्रता से बढ़ते हैं। धनी परिवार को बालकों का रहन – स्तर उच्च होता है। सुख- सुविधाओं उपलब्ध होती है, अच्छी शिक्षा प्राप्त होती है, उनका समाजीकरण भी अच्छा होता है।

1.8 लिंग

बालकों का व्यवहार उनकी (जेण्डर) लिंग भिन्नता की व्याख्या करता है कुछ कहते हैं लड़की या लड़का होना वंशानुक्रम से निर्धारित होता है, कुछ कहते हैं माता-पिता के व्यवहार से लड़का या लड़की व्यवहार करना सीखते हैं। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के अनुसार बालकों के लिंग विकास और संज्ञानात्मक विकास के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध होता है बालक स्वयं लिंग की पहचान करता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। लिंग स्थाई जैविक स्वरूप होता है लिंग पुरुषोचित (Masculinity) और स्त्रियोचित (Femininity) के मध्य अन्तर स्थापित करता है, जिसमें निम्न विशेषतायें सम्मिलित होती हैं 1. वैयक्तिक गुणधर्म 2. सामाजिक भूमिका 3. सामाजिक रीतियां 4. क्रियाकलाप 5. व्यवहार

किसी भी समूह की विशेषताओं के प्रति आम धारणा या विश्वास स्टीरियोटाइप कहलाते हैं। ये धारणायें एक समूह को दूसरे समूह कसे पृथक करती हैं। लिंग स्टीरियोटाइप का अर्थ है – “पुरुष और स्त्री, लड़के और लड़की के लिए आम विश्वास या आम धारण।” लगभग सभी बालक लिंग स्टीरियोटाइप को जान लेते हैं। यह जानकारी परिवार की प्रवृत्तियों और मूल्यों से ही नहीं वरन मीडिया, साथियों (विशेषकर स्कूल के साथी) से अन्तः क्रिया तथा अन्य बहुत से कारक होते हैं जिनसे बालक लिंग स्टीरियोटाइप को जान जाता है।

लड़कियों को आम धारणा के अनुरूप उनके कपड़ों, गहनों, बाल, सजने के तरीके आदि से समझा जाता है। लड़कों को इसके विपरीत उनकी सक्रियता और व्यवहार सम्बन्धित बातों से समझा जाता है, जैसे – मारपीट करना, कठिन खेल, सक्रियता वाले कार्य, विभिन्न प्रकारणों में लड़के और लड़कियों के लिंग स्टीरियोटाइप की अक्सर तुलना की जाती है।

1.8.1 लिंग का प्रभाव :-

1. **अध्यापक**— विद्यार्थियों में लिंग की समझ के विकास पर अध्यापकों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अक्सर अध्यापक वस्त्रों, स्वच्छता, सहायता करने वाले व्यवहार के आधार पर लड़कियों की प्रशंसा करते हैं इसके विपरीत ताकत, शारीरिक कौशल, कौशल, शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर लड़कों की प्रशंसा करते हैं। अध्यापक लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग सम्बोधन का प्रयोग करते हैं, लड़कियों को लड़कों और की अपेक्षा अधिक नरम ढंग से सम्बोधित करते करते हैं। कुछ अध्यापक लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की अपेक्षा लड़कियों को पढ़ाना आसान समझते हैं।
2. **मित्र** — बच्चे अपने मित्रों के साथ अंतःक्रिया करके लिंग पहचान बनाते हैं मित्रता और साथियों का दबाव लिंग स्टीरियोटाइप को प्रभावित करता है, खासतौर से लड़कों के मध्य, जो लड़के लड़कियों की तरह गुण प्रदर्शित करते हैं, उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। जब बालक अपने मित्रों के साथ खेलता है तो उसके खिलौनों से लिंग पहचान दिखाई पड़ती है।
3. **परिवार** — लिंग के बारे में जानने में परिवार का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। माता-पिता अक्सर कुछ व्यवहार की सराहना करते हैं और कुछ व्यवहारों को हतोत्साहित करते हैं इन सबका प्रभाव लिंग पहचान पर पड़ता है। परिवार की संस्कृति और जातीय विशेषताओं के अनुरूप बालक की लिंग के प्रति समझ विकसित होती है। विविध जातियों का सांस्कृतिक पक्षपात (Cultural Biases) भी बालकों में स्टीरियोटाइप के विकास को बढ़ावा देते हैं उदाहरणार्थ, कुछ संस्कृतियों में बेटों को बेटियाँ से अधिक प्यार-दुलार मिलता है, बेटों

की आवश्यकतायें पहले पूरी की जाती हैं, उन्हें अधिक सुविधाओं दी जाती है।

4. **शैक्षिक परिणाम—(Academic Outcomes)** अक्सर माना जाता है कि लड़कियाँ विज्ञान गणित और तकनीकी जैसे विषयों में कम रुचि लेती हैं, उनका आत्मविश्वास भी इन क्षेत्रों में कम होता है। परिवार और समाज के द्वारा इस तरह कुछ पक्षपातपूर्ण बातें प्रस्तुत की जाती हैं हो सकता है कि ये लड़कियों से कम अपेक्षाएँ रखते हों, तथापि इन क्षेत्रों में लड़कियों की अपेक्षा लड़के कुशल माने जाते हैं। तुलना के कारण बाल्यावस्था एवं विकास प्रभावित होता है एवं बालक कुंठा ग्रस्त हो जाते हैं।

1.9 प्रजाति (Race) का प्रभाव

प्रजाति का अर्थ एक ऐसे बड़े मानव समूह से होता है जिसमें कुछ विशेष तरह की शारीरिक व मानसिक विशेषताएँ पायी जाती हैं। ये शारीरिक विशेषताएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बिना किसी अधिक परिवर्तन के जैविकीय रूप से हस्तांतरित होती रहती हैं। इसे नस्ल भी कहते हैं।

प्रजाति तत्वों का प्रभाव बालक के विकास पर देखा गया है। प्रजातीय प्रभाव को बालकों के विकास में महत्वपूर्ण मानते हैं।

मेकग्रों का कथन है कि जीव शास्त्र की दृष्टि से कुछ जातियाँ अन्य जातियों की बजाय ज्यादा विकसित होती हैं। उनका मत है कि श्वेत जातियों के विकास की तुलना में नीग्रों लोगों का विकास 80 प्रतिशत है इसी तरह जुंग का भी मत है कि भूमध्य सागरीय तट पर रहने वाले बालकों का विकास शेष यूरोप के बालकों की बजाय तीव्र गति से होता है, नीग्रो बच्चे श्वेत बच्चों की अपेक्षा परिपक्वता शीघ्र प्राप्त

करते हैं। उनके विकास में अन्तर जन्मजात न होकर अवसर की कमी से भी हो सकता है।

विकासात्मक कार्य बालकों द्वारा वे ही सम्पादित किये जाते हैं जिनकी उपस्थिति या छाप बालकों के सामने एक मॉडल के रूप में रहती है। इस तरह वर्तमान परिस्थितियों तथा भविष्य की आवश्यकता किसी प्रजाति विशेष के बालकों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले विकासात्मक कार्यों की रूपरेखा तय करती है। उदाहरण के लिये मछुआरों के समाज में बालकों के विकासात्मक कार्य मछली पालन तथा समुद्र तट के परिवेश से जुड़ी हुई बातों का ही प्रतिनिधित्व करेंगे और इसी तरह सपेरे तथा जन-जातियों के परिवेश से जुड़े बच्चों के विकासात्मक कार्य संरचनाओं के अनुरूप ही होंगे। यही कारण है कि विकास काल में बालकों की प्रजाति संरचना की विभिन्नतायें विकास और वृद्धि स्वभाविक रूप से देखने को मिलती है।

1.10 धर्म का प्रभाव

बालक के सामाजिक विकास पर घर की स्थिति का प्रभाव पड़ता है। धनी परिवार के बालक अच्छे निवास स्थान पर अच्छे वातावरण पर रहते हैं उन्हें सभी प्रकार के सुख साधन उपलब्ध होते हैं। वे अच्छे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं। जबकि निर्धन परिवार के बालक आवश्यक सुविधाओं से वंचित रहते हैं इससे उनका सामाजिक विकास भी प्रभावित होता है। धर्म बाल्यावस्था में महत्वपूर्ण प्रभावकारी कारक सिद्ध बच्चे की जन्म से ही धर्म के रूप में उसे पहचान मिल जाती है जैसे हिन्दू बालक हिन्दू संस्कारों को धारण करता है, पूजा-पाठ संस्कृत का अध्ययन श्लोकों को सीखना आदि नैतिक मूल्यों को धारण करता है मुस्लिम बालक कुरान के नियमों को एवं ईसाई बालक बाइबिल के नियमों को धारण करता है इसी तरह सिख

बालक सिख धर्म को अपनाता हैं हर धर्म का बालक अपने धर्म को धारण कर उसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को संरक्षित करता है।

दुर्खीम ने परिभाषा देते हुए लिखा है कि “धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक विश्वासों तथा आचरणों की वह व्यवस्था है जो अपने से सम्बन्धित लोगों को एक नैतिक समुदाय में जोड़ती है।”

वर्तमान में धर्म सामाजीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था है। धर्म के कारण व्यक्ति सामाजिक व्यवहार सन्तुलित होता है। धार्मिक संस्थाएँ हमें ईश्वर से अवगत कराती हैं, हमारे विश्वासों को दृढ़ करना सिखाती हैं। सामाजीकरण में धार्मिक संस्थाओं के महत्व को स्पष्ट करते हुए **मैलिनोवस्की** ने लिखा है— “संसार में मनुष्यों का कोई भी समूह धर्म के बिना नहीं रह सकता चाहे वह कितना ही जंगली क्यों न हो, धर्म जाति में आदर्श, नैतिकता सच्चरित्रता तथा शारीरिक, बौद्धिक, सहनशीलता, जैसे आदर्श गुणों का विकास करके उसे प्रत्येक परिस्थिति में अनुकूल करने के लिए तैयार करती है।”

शैशवावस्था की स्वार्थ-भावना, बाल्यावस्था में मित्रों के साथ खेलने की भावना, किशोरावस्था में सामाजिक भावना यानि दूसरों की मदद करने में सुख महसूस करने की भावना में परिवर्तित हो जाती है। इसी समय किशोर तथा किशोरियाँ धार्मिक भावना और अलौकिकता में विश्वास करने में उत्सुक रहते हैं। धीरे-धीरे उसको आत्मसात करते हैं तथा स्वयं को ईश्वरीय शक्ति के प्रति आस्थावान बनाना शुरू कर देते हैं।

इसी कारण आत्मचेतन, संयम, नियंत्रण कर्त्तव्य पालन सेवा भाव आदि महान व्यावहारिक क्रियाएँ शुरू होती हैं। अतः इसी बाल्यावस्था में धार्मिक भावनाएं प्रकट होकर अपना प्रभाव स्थायी बनाती हैं। इससे धार्मिक उदासीनता, तरह-तरह के संदेहों और सांस्कृतिक मिश्रण को भी प्रोत्साहन मिलता है। इसके बाद भी धार्मिक सहनशीलता प्रगतिशील समाजों की एक विशेषता बनती जा रही है उदाहरण के लिए, सभी धर्मों से सम्बन्धित मुख्य पर्वों का आयोजन राज्य द्वारा किया जाने लगा

है। व्यक्ति द्वारा जिस आचार संहिता का पालन करना जरूरी है, उसका निर्धारण धर्म द्वारा न करके राज्य द्वारा किया जाने लगा है।

धर्म का उद्देश्य बालक का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक व आध्यात्मिक विकास करना है। मनुष्य की सेवा को हर धर्म में ईश्वर की सबसे अच्छी सेवा के रूप में देखा जाता है।

1.11 बाल्यावस्था में अक्षमता का प्रभाव

बाल्यावस्था में बच्चों में प्रगति अर्थात् विकास अत्यंत आवश्यक है परन्तु किन्हीं कारणों से उसमें कभी-कभी अक्षमता उत्पन्न हो जाती है। अक्षमता का कारण रोग, दुर्घटना, अपंगता, शारीरिक विकास न हो पाना आदि है जो कि बालक के सवेंगात्मक विकास को प्रभावित करता है। स्नेह और विनोद के भाव रखने वाला बालक सभी का स्नेह का पात्र होता है जबकि इसके विपरीत ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष व घृणा के भाव रखने वाले बालक की उपेक्षा होती है। ऐसी स्थिति में दोनों प्रकार के बालाको के सामाजिक विकास में अन्तर होना स्वाभाविक है। जो बालक मानसिक स्वास्थ्य में दुर्बल होते हैं चिन्ता व द्वन्द में रहते हैं वे भग्नशा के शिकार हो जाते हैं। उनका समाजीकरण उचित रूप से नहीं हो पाता ऐसे बालकों पर अक्षमता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है वे स्वयं को अपर्याप्त व आत्म संतुष्टि में विचलित महसूस करते हैं। अक्षम बालकों को दिव्यांश बालक भी कहा जाता है। ये दिव्यांश बच्चे कहलाते हैं।

“विकलांगता एक ऐसी स्थिति है जो किसी भी व्यक्ति को किसी भी अवस्था में उसके सामान्य व्यवहार, कार्यशक्ति, विचार एवं नियमित कृत्य को न्यूनाधिक प्रभावित कर आंगिक मानसिक, सामाजिक व भावात्मक असन्तुलन उत्पन्न कर देती हैं।”

1.11.1 बाल्यावस्था में विशेष बच्चों की वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव:-

वृद्धि एवं विकास एक जटिल प्रक्रिया है इसमें बहुत सारे तत्व एवं जैविक, संज्ञात्माक एवं ऐतेहासिक विकास शामिल है यदि इनमें से किसी भी में भी विकार

उत्पन्न हो जाता है तो वह वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव डालता है इन विकारों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है।

1. व्यापक वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव। 2. मानसिक मंदता। 3. अधिगम अक्षमता (Learning disability)

1. **व्यापक वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव :-** इस व्यापक विकासी विकार को औटिज्म **Autism** कहते हैं। **Autistic** बच्चे दूसरे लोगों से कभी संबंध नहीं बना पाते हैं। ऐसे बच्चे अपने माता पिता के प्यार भरे व्यवहार का भी उत्तर नहीं देते हैं ऐसे बालकों में वाणी और भाषा का विकास देर से होता है या फिर नहीं होता है उनके दैनिक जीवन संबंधी आसपास के वातावरण में थोड़ा सा भी परिवर्तन होने से उन्हें तकलीफ होती है ये स्वयंपरायण होते हैं।
2. **मानसिक मंदता :-** मानसिक मंदता का सामान्य अर्थ है औसत से कम मानिकस योग्यता। ऐसे बच्चों की बुद्धि लब्धि साधारण बालकों की बुद्धि लब्धि से कम होती है एवं मंद बुद्धि बालक धीरे- धीरे सीखते हैं अनेक गलतियाँ करते हैं जटिल परिस्थितियों को ठीक तरह नहीं समझते हैं और अनेक कार्यों के परिणामों पर उचित विचार लिये बिना बहुधा भावावेश पूर्ण व्यवहार करते हैं। भूले अधिक होती हैं याददाश्त कम पाई जाती है।
3. **सीखने से संबंधित वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव :-** बौद्धिक क्रियाकलाप में इस विकार वाले बच्चे अन्य बच्चों की तरह ही होते हैं इनमें किसी प्रकार मानसिक विछड़ापन नहीं होता है परंतु इस विकार वाले बच्चों में पढ़ने, लिखने, वर्तनी की शुद्धता व गणित के प्रश्न हल करने की दिक्कत होती है ये सभी कठिनाईयाँ मस्तिष्क में मौजूद कोई गड़बड़ी, संवेगात्मक या व्यवहार विषयक कमी के कारण होती हैं
4. **विशिष्ट बालकों की विशिष्ट शिक्षा :-** विशिष्ट बालक सामान्य स्कूलों की सामान्य कक्षाओं से लाभ नहीं उठा पाते हैं, अतः उनके लिये विशेष

शिक्षण विधियों, पाठ्यक्रमों शिक्षकों की आवश्यकता होती है। विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता मानसिक व शारीरिक विकलांग बालकों को भी होती है क्योंकि वे परिवार व समाज में समायोजित होने में कठिनाई अनुभव करते हैं। विशिष्ट शिक्षा, अभिभावकों, शिक्षकों एवं शैक्षिक प्रबन्धकों को विशिष्ट बालकों की समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करती है। इनके द्वारा विशिष्ट बालक समाज में समायोजन बना लेता है एवं सीखने योग्य बालकों को कठिनाई, तनाव व कुंठा से बचने में सहायता भी मिलेगी।

1.11.2 अक्षम बालकों का समाजीकरण

अक्षम और रोगी बालकों का समाजीकरण अनिवार्य है। इसके लिए उन्हें ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिनके कारण वे अपने हमउम्र तथा अन्य लोगों से हिलमिल सकें। पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा यह कार्य सम्भव हो सकता है। इन्हें नाना प्रकार की मनोरंजक क्रियाएँ करवायी जानी चाहिए। इन विशिष्ट बालकों को किसी क्लब का सदस्य अवश्य बनाना चाहिए जहाँ प्रतिदिन शाम को ये लोग अपने अनुरूप खेल खेलने जाया करें। इससे वे संसार के निकट आ सकेंगे और अपने ज्ञान तथा सोच की सीमा को विस्तृत कर सकेंगे। **हारागूची** द्वारा कुछ ऐसे प्रोग्राम बताये गये हैं शिक्षक इनका लाभ उठा सकते हैं। विकलांग व रोगी बालकों के मनोरंजन के लिए कभी-कभी कुछ विशेष प्रोग्राम-सम्मेलन, गोष्ठी, सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते हैं। व्यक्तिगत संस्थाओं को भी इस क्षेत्र में प्रयास करना चाहिए। शिक्षकों को चाहिए कि वे व्यक्तिगत संस्थाओं को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित करें।

अपनी प्रगति की जाँच करें—

नोट — अ. नीचे दिये गये स्थान पर उत्तर लिखें।

ब. अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये उत्तर से करें।

प्र.5 अक्षमता के कौन से कारण हैं?

6. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

- अ. जाति एक ————— वर्ग है।
- ब. धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित अनेक ————— तथा ————— की व्यवस्था है।
- स. बालकों के सामाजीकरण पर ————— का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

1.12 बाल पालन विधियाँ

इनका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है

अ. सामाजिक एकाकी बालक

कुछ बालक शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक कारणों से अन्य बालकों में हिल मिल नहीं पाते और न मित्र ही बना पाते हैं। इस प्रकार के बालक सामाजिक जीवन में एकाकी रह जाते हैं। इससे उनके मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे सामाजिक गुणों का विकास नहीं कर पाते। उनमें हीनता की भावनाएँ बढ़ने लगती हैं और आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की भावना का विकास नहीं हो पाता। इससे उनके चरित्र के विकास में बाधा पड़ती है।

सामाजिक एकाकीपन के अनेक कारण हो सकते हैं। कुछ बालकों में शारीरिक, दोष इसका कारण होते हैं। ये शारीरिक दोष हाथ—पैर, आँख, वाक् इत्यादि के दोष होते हैं। अत्यधिक कमजोर बालक भी अन्य बालकों से दूर रहने

को बाध्य होते हैं। शारीरिक अथवा मानसिक असामान्यता बालक के समाजीकरण में बाधक होती है और उसको समूह में मिलने-जुलने नहीं देती।

सामाजिक एकाकी वह बालक है जो स्वयं समाज में मित्र नहीं बना पाता। अस्तु, माता-पिता और शिक्षकों को इस विषय में उसकी सहायता करनी चाहिए। उसका ऐसे बालकों से परिचय कराना चाहिए जो उसे ग्रहण कर सकते हैं और बराबर यह देखभाल करनी चाहिए कि उनके किसी व्यवहार से उस बालक पर ऐसा प्रभाव न पड़े कि वह फिर से समूह से दूर भाग जाना चाहे। ऐसे बालक अत्यधिक संवेदनशील होते हैं और दूसरों के थोड़े भी दुर्व्यवहार का उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि बालक में किसी प्रकार का शारीरिक और मानसिक दोष नहीं है तो एकाकीपन का कारण संवेगात्मक होता है जो कि अधिकतर पारिवारिक परिस्थितियों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार की पारिवारिक परिस्थितियों में माता-पिता का अत्यधिक क्रोधी, हिंसक और भ्रष्ट स्वभाव और आचार का होना सम्मिलित है। अस्तु, बालक के स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए स्वस्थ पारिवारिक परिवेश सबसे पहली शर्त है।

ब. सामाजिक स्तरीकरण और बालक

प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न व्यक्ति सामाजिक वर्गों के सदस्य होते हैं। सामाजिक स्तरीकरण लगभग प्रत्येक समाज में पाया जाता है। भारत में जाति पर आधारित वर्ग पाए जाते हैं। सामाजिक वर्ग कही सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित होते हैं तो कहीं आर्थिक स्थिति पर आधारित होते हैं जैसे आधुनिक समय में उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग पाए जाते हैं। यूँ तो बालक को स्वाभाविक रूप में अपने वर्ग का कोई आभास नहीं होता और यह देखा जाता है कि यदि विभिन्न वर्गों के बालकों को मुक्त रूप से मिलने- जुलने दिया जाए तो वे परस्पर व्यवहार में वर्ग का कोई भी चिन्ह नहीं दिखलाते परन्तु वास्तविक स्थिति में लगभग सभी बालकों पर उनके माता-पिता के वर्ग का प्रभाव देखा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि माता पिता स्वयं बालकों को बराबर यह बतलाते रहते हैं कि वे किस वर्ग से ऊँचे अथवा किस वर्ग से नीचे है। निर्धन वर्ग के माता पिता अपने

बालकों को उच्च वर्ग के बालकों से तथा निम्न अथवा अस्पृश्य कहीं जाने वाली जातियों के बालकों से मिलने-जुलने नहीं देते। इस प्रकार माता-पिता ही बालकों में वर्ग चेतना उत्पन्न करते हैं। जिससे आगे चलकर उनके सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में अनेक अध्ययनों से यह मालूम हुआ है कि यद्यपि गोरे बालक काले बालकों के साथ खेलना चाहते हैं परंतु उनके माता-पिता उनको तरह-तरह के भय दिखाकर उनके मन में काले बालकों के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न कर देते हैं। भारवर्ष में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों में माता-पिता में यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। स्पष्ट है कि सामाजिक स्तरीकरण का प्रभाव मातापिता और पारिवारिक परिस्थितियों के द्वारा ही बालकों पर पड़ता है।

स. प्रतिद्वन्द्विता का महत्व एवं बालक

बालकों को विभिन्न कार्यों के लिए प्रोत्साहित करने वाले प्रेरकों में प्रतिद्वन्द्विता एक महत्वपूर्ण प्रेरक है जो 2 वर्ष की आयु के पूर्व दिखलाई नहीं पड़ता परन्तु उसके बाद बालकों में प्रतिद्वन्द्विता की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। 6 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते यह प्रवृत्ति अत्यन्त स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार यद्यपि प्रारम्भ में बालक का व्यवहार तटस्थ होता है परन्तु क्रमशः आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें प्रतिद्वन्द्विता अथवा सहयोग की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। बालक शीघ्र ही प्रतिद्वन्द्वी के प्रति ईर्ष्या अनुभव करने लगता है। यह प्रतिद्वन्द्विता अधिकतर माता-पिता का प्रेम प्राप्त करने के लिए होता है। इसके अतिरिक्त खिलौने तथा दूसरी वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए भी प्रतिद्वन्द्विता हो सकती है। 3 वर्ष की आयु के पूर्व इस प्रवृत्ति का बालक के व्यवहार पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता बालक अपने ही खेलों में मस्त रहता है और उसे यह परवाह नहीं होती कि अन्य बालक क्या कर रहे हैं। क्रमशः अधिकतर संस्कृतियों में बालक में प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न होती है। कुछ संस्कृतियों में बालकों की इस प्रवृत्ति का विरोध किया जाता है, वहाँ पर बालकों में यह प्रवृत्ति बहुत कम देखी जाती है। स्पष्ट है कि प्रतिद्वन्द्विता की प्रवृत्ति सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिणाम है।

इस प्रकार प्रतिद्वन्द्विता का स्वस्थ होना आवश्यक है। स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता में बालक अपने प्रतिद्वन्द्वी से आगे बढ़ने के लिए परिश्रम करता है। अनुचित साधन नहीं अपनाता। इस प्रकार स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता सहयोग के विरुद्ध नहीं है बल्कि दूसरी ओर उसके सहयोग की प्रवृत्ति बढ़ती है। अस्तु, मूल बात प्रतिद्वन्द्विता को रोकना या बढ़ाना न होकर स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता को प्रोत्साहित करना है। इसके लिए माता-पिता और शिक्षक बालकों के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। जिनमें यह प्रवृत्ति बढ़े। ध्यान रहे कि इस प्रवृत्ति का अत्याधिक बढ़ना कभी भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि इससे बालक अनुचित उपाय अपनाने लगते हैं।

ड. अनुशासन का महत्व और साधन

बालक के चरित्र के संगठन में अनुशासन के महत्व के विषय में दो मत नहीं हैं। फिर भी अनुशासन शब्द के अर्थ के विषय में शिक्षाशास्त्रियों में भिन्न-भिन्न मत दिखलाई पड़ते हैं वेल्सन के शब्दों में, “समस्त बच्चे अनुशासन का लक्ष्य अन्तर्चेतना का प्रतिरक्षण है जो कि शुभ संकल्प प्राप्त करने और नैतिक अन्तर्दृष्टि के विकास में होता है।” अनुशासन का प्रतिरक्षण इसलिए किया जाता है कि व्यक्ति की अन्तर्चेतना प्रशिक्षित हो जाए। अन्तर्चेतना के विकास से नैतिक अन्तर्दृष्टि बढ़ती है। अर्थात् व्यक्ति यह जानता है कि उसे क्या करना उचित है और क्या अनुचित है। अनुशासित बालक घर, विद्यालय, समाज सब कहीं उचित-अनुचित कार्यों के अन्तर को समझता है और उचित कार्य करता है तथा अनुचित से दूर रहता है। अनुशासन का लक्ष्य व शिक्षा का उद्देश्य नैतिकता है अर्थात् शिक्षा को बालक को नैतिक बनाना चाहिए। यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि विद्यार्थी में अनुशासन उत्पन्न किया जाए।

1.13 संस्कृतिक विविधता— (Cultural Diversities)

अपने विशाल आकार के कारण भारतीय समाज में परम्पराओं, खान-पान, कला, वेश-भूषा, व्यवहार के तरीकों, रहन-सहन के स्तर और नैतिक नियमों के क्षेत्र में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ अलग-अलग धर्मों और सम्प्रदायों से सम्बन्धित लोगों की प्रथाओं और विश्वासों में भिन्नता है। विभिन्न क्षेत्रों की

वेश-भूषा भी एक-दूसरे से अलग है। नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों की सांस्कृतिक विशेषताओं में स्पष्ट भिन्नता पायी जाती है। कुछ क्षेत्रों में मांसाहार का प्रचलन है जबकि जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा पूरी तरह शाकाहारी है। भारतीय कला और निर्माण कला में भी विविधता देखने को मिलती है। मन्दिरों, मस्जिदों, चर्चों और बौद्ध-स्तूपों की निर्माण-कला को देखकर इस भिन्नता को सरलता से समझा जा सकता है।

किसी भी समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में परिवार के संगठन का विशेष महत्व होता है। भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में परिवार का संगठन एक-दूसरे से भिन्न विशेषताओं वाला है। अधिकांश क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं, लेकिन अनेक क्षेत्रों और जनजातीय समूहों में मातृसत्तात्मक परिवारों का प्रचलन है। नगरों में केन्द्रक परिवारों की संख्या तेजी से बढ़ रही है तो गाँवों में आज भी संयुक्त परिवार को अच्छा समझा जाता है। विवाह सम्बन्धी प्रथाएँ भी यहाँ की सांस्कृतिक भिन्नता को स्पष्ट करती हैं। हिन्दुओं, सिक्खों, बौद्धों, जैनियों और ईसाइयों में एक विवाह का नियम है, जबकि मुसलमान पुरुष एक साथ चार पत्नियाँ रख सकते हैं। जनजातियों में एक विवाह के साथ बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह का भी प्रचलन है। विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों की परिस्थिति भी भिन्न है। गाँवों में स्त्रियाँ खेत और खलिहानों में पुरुषों की तरह सभी काम करती हैं, लेकिन नगरों में स्त्रियों द्वारा शारीरिक श्रम बहुत कम किया जाता है। कुछ समूहों में पर्दा प्रथा का प्रचलन है, लेकिन अधिकांश समुदाय तेजी से आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में मनाये जाने वाले त्योहारों में भी काफी विविधता देखने को मिलती है। प्रत्येक समाज की परंपराओं, उपलब्धियों, आदर्शों के आधार पर बालक का सामाजीकरण होता है एवं बालक अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं को अपने चिंतन में ग्रहण करता है।

1.14 इकाई सारांश (याद रखने योग्य बातें)

- बाल्यावस्था मानव जीवन के लगभग 6 से 12 वर्ष की आयु का वह काल है जिसमें बालक के जीवन में स्थायित्व आने लगता है और वह आगे आने

वाले जीवन की तैयारी करता है। बाल्यावस्था की यह आयु शिक्षा आरम्भ करने के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

- बालक को सामाजिक प्राणी बनाने के लिए जितनी भी परम्पराओं, नियमों और वस्तुओं का विकास हुआ है, वे सभी संस्कृति का अंग हैं।
- बालक के समाजीकरण पर सबसे अधिक प्रभाव परिवार के प्रौढ़ सदस्यों और माता-पिता के द्वारा देखभाल और पालन-पोषण के तरीके का पड़ता है। बालक के समाजीकरण की प्रथम पाठशाला परिवार ही होता है।
- जाति उस वर्ग अथवा झुंड को कहते हैं। जिसमें सदस्यों की सदस्या तथा उनके कर्तव्य एवं अधिकार जन्म से ही निश्चित हो जाते हैं। ध्यान देने की बात है कि जाति एक बन्द वर्ग है।
- बालकों के सामाजीकरण एवं संस्कृति विकास पर वर्ग या क्लास का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हमारे वातावरण में विभिन्न वर्ग के लोग हैं जिनका विभेदीकरण आय के अनुसार, देश के अनुसार किया गया है।
- बालकों का व्यवहार उनकी (जेण्डर) लिंग भिन्नता को व्याख्यायित करता है लड़की या लड़का होना वंशानुक्रम से निर्धारित होता है। माता-पिता के व्यवहार से लड़का या लड़की व्यवहार करना सीखते हैं। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के अनुसार बालकों के लिंग विकास और संज्ञानात्मक विकास के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध होता है बालक स्वयं लिंग की पहचान करता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है।
- प्रजाति तत्वों का प्रभाव बालक के विकास पर देखा गया है। प्रजातीय प्रभाव को बालकों के विकास में महत्वपूर्ण मानते हैं।
- वर्तमान में धर्म सामाजीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था है। धर्म के कारण व्यक्ति सामाजिक व्यवहार सन्तुलित होता है। धार्मिक संस्थाएँ हमें ईश्वर से अवगत कराती हैं, हमारे विश्वासों को दृढ़ करना सिखाती हैं। सामाजीकरण

में धार्मिक संस्थाओं के महत्व को स्पष्ट करते हुए **मैलिनोवस्की** ने लिखा है— “संसार में मनुष्यों का कोई भी समूह धर्म के बिना नहीं रह सकता चाहे वह कितना ही जंगली क्यों न हो, धर्म जाति में आदर्श, नैतिकता सच्चरित्रता तथा शारीरिक, बौद्धिक, सहनशीलता, जैसे आदर्श गुणों का विकास करके उसे प्रत्येक परिस्थिति में अनुकूल करने के लिए तैयार करती है।”

- बाल्यावस्था में बच्चों में प्रगति अर्थात् विकास अत्यंत आवश्यक है परन्तु किन्हीं कारणों से उसमें अक्षमता उत्पन्न हो जाती है। अक्षमता का कारण रोग, दुर्घटना, अपंगता, शारीरिक विकास न हो पाना आदि है। जो कि बालक के सर्वेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। स्नेह और विनोद के भाव रखने वाला बालक सभी का स्नेह का पात्र होता है जबकि इसके विपरीत सदैव ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष व घृणा के भाव रखने वाले बालक की उपेक्षा होती है। ऐसी स्थिति में दोनों के सामाजिक विकास में अन्तर होना स्वाभाविक है।
- अपने विशाल आकार के कारण भारतीय समाज में परम्पराओं, खान-पान, कला, वेश-भूषा, व्यवहार के तरीको, रहन-सहन के स्तर और नैतिक नियमों के क्षेत्र में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। यहाँ अलग-अलग धर्मों और सम्प्रदायों से सम्बन्धित लोगों की प्रथाओं और विश्वासों में भिन्नता है। नगरीय और ग्रामीण छात्रों की सांस्कृतिक विशेषताओं से स्पष्ट भिन्नता पायी जाती है।

1.15 अपनी प्रगति की जाँच करें

- बाल्यावस्था किसे कहते हैं?
- समाजीकरण से क्या आशय है?
- जाति से आप क्या समझते हैं?
- जाति की किन्हीं तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए एवं इसका बाल विकास पर होने वाले प्रभाव का वर्णन किजिये ।

- प्रजाति का क्या अर्थ है?
- नस्ल विकास में किस प्रकार भूमिका निभाती है ।
- संस्कृति का बाल्यावस्था पर प्रभाव लिखिये ?
- बालक के सामाजीकरण का विश्लेषण पर प्रकाश डालियें ।
- धर्म बाल्यावस्था को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ।
- अक्षम बालकों का सामाजीकरण कैसे किया जा सकता है ।

1.16 नियम कार्य / गतिविधियाँ

परिवार किन किन साधनों के द्वारा बच्चे का समाजीकरण करता है?

आज लिंग भेद को सामाजिक स्तरीकरण का आधार क्यों नहीं माना जाता?

इस इकाई को पढ़ने से आपको जो बाल-पालन संबंधी ज्ञान मिलता है उसका उपयोग आप किस प्रकार कर सकते हैं।

1.17 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.17.1 चर्चा के बिन्दु

1.17.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.18 उत्तर – अपनी प्रगति की जाँच के उत्तर

1. बाल्यावस्था मानव जीवन के 6 वर्ष से आरंभ होती है।
2. संस्कार का आशय एक ऐसी क्रिया से है जो व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का बोध कराकर उसका समाज से अनुकूलन करती है। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने और उसके व्यक्तित्व को विकसित करने में जितने भी भौतिक और अभौतिक तत्वों का योगदान होता है, उन सभी की व्यवस्था को हम संस्कृति कहते हैं।
3. बाल्यावस्था में समाजीकरण की गति तीव्र होती है।
4. जाति उस वर्ग अथवा झुंड को कहते हैं जिसमें सदस्यों की सदस्यता तथा उनके कर्तव्य एवं अधिकार जन्म से ही निश्चित हो जाते हैं। ध्यान देने की बात है कि जाति एक बन्द वर्ग है।
5. अक्षमता का कारण रोग, दुर्घटना, अपंगता, शारीरिक विकास न हो पाना आदि होता है।
6. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न –**
 - अ. बन्द
 - ब. विश्वासों, आचरणों
 - स. वर्ग

1.19 संदर्भ ग्रंथ

शिक्षा मनोविज्ञान भाग 1

भोपाल एम,एम,एस, पब्लिकेशन

सिंह अरुण कुमार 2004 दिल्ली आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन ।

1. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण, पूर्णतः परिमार्जित संशोधित संस्करण ,समाजशास्त्र, इन्दौर , शिवलाल अग्रवाल, ।
2. बघेल डॉ डी.एस. (1983—). भारतीय सामाजिक समस्यायें रीवा पुष्पराज प्रकाशन
3. Bhatt, U.(1963).The Physically Handicapped, Bombay, Popular Prakashan.
4. भार्गव डॉ.महेश, (2009). विशिष्ट बालक. आगरा. एच. पी. भार्गव बुक हाउस
भार्गव डॉ.महेश, (2009). विशिष्ट बालक, उनकी शिक्षा एवं पुनर्वास. आगरा. एच. पी. भार्गव बुक हाउस कचहरी घाट
5. दीक्षित डॉ. ध्रुव. (2006). समाज शास्त्र. इन्दौर. शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,
6. लाल रमन बिहारी (2000). शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत. मेरठ रस्तोगी पब्लिकेशन ।
7. महाजन डॉ. कमलेश डॉ. धर्मवीर (1987—88). समाज शास्त्र के सिद्धांत. मेरठ शिक्षा साहित्य प्रकाशन ।
8. मुखर्जी रविन्द्रनाथ (1988—89). भारतीय समाज व संस्कृति. दिल्ली, विवेक प्रकाशन. जवाहर नगर ।
9. Pandey Ramshakal.(2006). Advanced Educational Psychology. Meereut. R. Lall Book Depot,
10. पाठक पी.डी. (इक्यावनवां संशोधित संस्करण) शिक्षा मनोविज्ञान. आगरा , श्री विनोद पुस्तक मन्दिर,
11. सक्सेना सरोज,. (1997). शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार. आगरा साहित्य प्रकाशन

12. सिंह अरुण कुमार. (2004). आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान. दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन ।
13. शर्मा आर. के. श्रीमती (2004). बाल विकास के मनोवैज्ञानिक आधार. आगरा राधा प्रकाशन मंदिर ।
14. श्रीवास्तव डॉ. डी.एन., सिंह प्रोफेसर रणजीत, पांडे डॉ. जगदीश. (1997). आधुनिक समाज मनोविज्ञान. आगरा. हरप्रसाद भार्गव शैक्षिक पुस्तक प्रकाशक ।
15. सिंह आर.एन., (छटवाँ संस्करण). आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान. अग्रवाल पब्लिकेशन
16. राठौड़ अजय सिंह. (1994). जनजाति शिक्षा और आधुनिकीकरण. जयपुर. पंचशील प्रकाशन
17. Smith, L.M.(1980). The College Student with a Disability: A Faculty Handbook (Report No. 8-327-505:Q.L.4), Washington, D.C. : U.S. Govt. Printing Office.